अध्यात्मयुगस्त्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन)

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

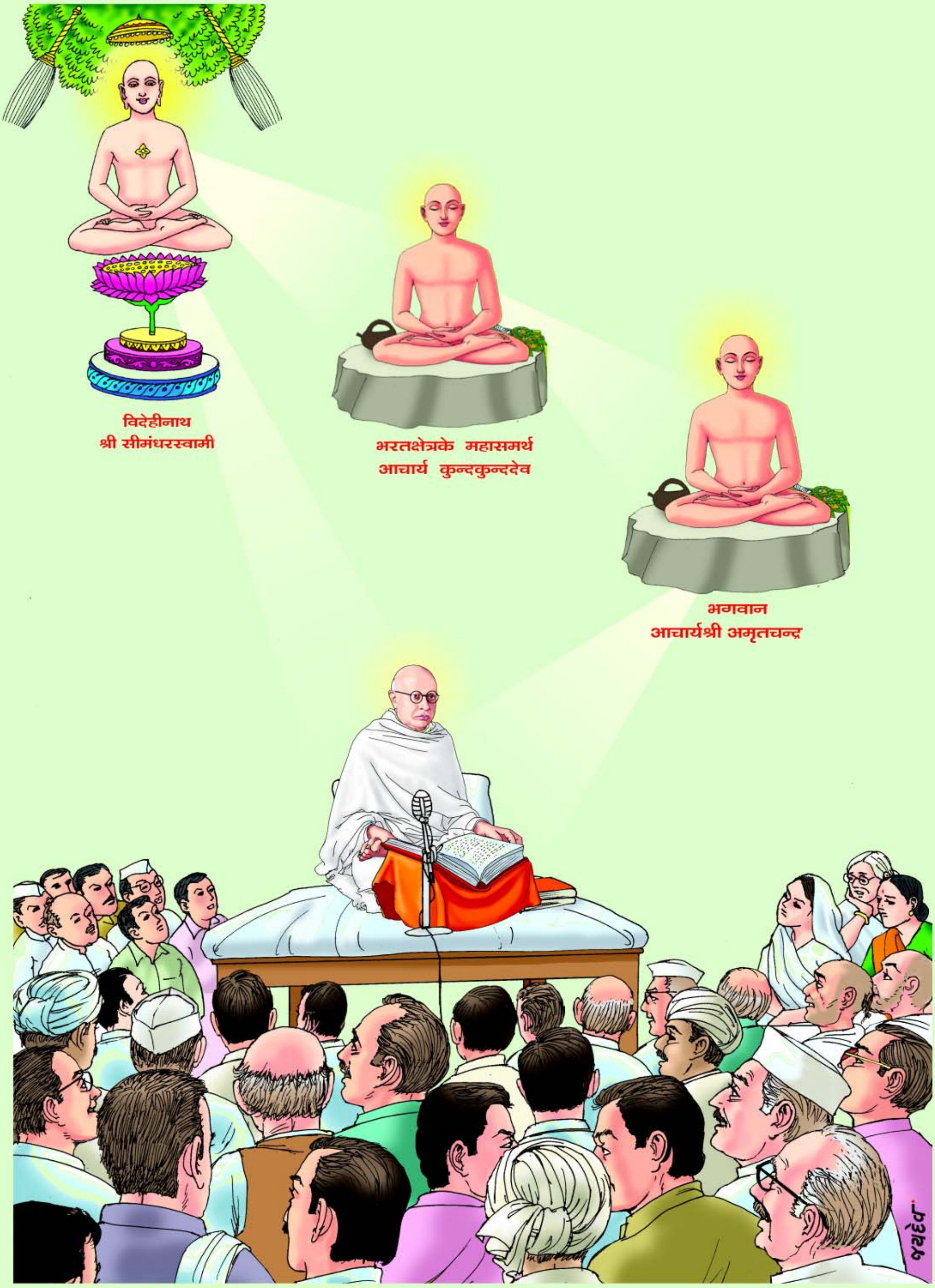

देश-विदेशके मुमुक्षुओंको मिलता पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा भगवान सीमंधरनाथ, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव और भगवान अमृतचंद्राचार्यदेवका ज्ञानप्रवाह

भगवानश्रीकुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प नं. २५१

ॐ

सद्‌गुरुवे नमः।

अध्यात्मयुगस्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन)

卐

लेखक

ब्र. चन्दुलाल खीमचन्द झोबालिया

卐

अनुवादक :

मगनलाल जैन

卐

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

प्रथम आवृत्ति प्रत : १००० वि.सं. २०७२ ई.स. २०१६

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (हिन्दी)के

✾ स्थायी प्रकाशन-पुरस्कर्ता ✾

स्व. श्री चंद्रसेनजी व स्व. रतनबेन बण्डीकी पुण्यस्मृतिमें
बण्डी ब्रदर्स, उदयपुरकी ओरसे
ह. चिदंककुमार, सेजलबेन व द्रव्या

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (हिन्दी)के

✾ स्थायी किमत घटानेवाले-पुरस्कर्ता ✾

स्व. श्री चंद्रसेनजी व स्व. रतनबेन बण्डीकी पुण्यस्मृतिमें
बण्डी ब्रदर्स, उदयपुरकी ओरसे
ह. प्रवीण, नवीन, विभास, दीपक

मूल्य रू. 5 = 00

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
सोनगढ-(सौराष्ट्र)

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग बिन वह नाव भी तारे नहीं।
इस कालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य है;
मम पुण्यराशि फली अहो! गुरु कहान नाविक आ मिले।।

*

अहो! भक्त चिदात्माके, सीमंधर-वीर-कुन्दके!
बाह्यान्तर विभवों तेरे, तारे नाव मुमुक्षुके।।

*

शीतल सुधाझरण चन्द्र! तुझे नमूं मैं;
करुणा अकारण समुद्र! तुझे नमूं मैं।
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तुझे नमूं मैं;
इस दासके जीवनशिल्पी! तुझे नमूं मैं।।

*

अहो! उपकार जिनवरका, कुन्दका, ध्वनि दिव्यका।
जिनके, कुन्दके, ध्वनिके दाता श्री गुरुकहानका।।

—पं. हिम्मतलाल जे. शाह

गुरुदेव तो गुरुदेव ही थे। वे (भविष्यके) शलाकापुरुष थे। उनके अन्तरमें चैतन्यचमत्कार प्रकट हुआ था। उनकी दिव्य मुखमुद्रा पर सदैव ज्ञान-वैराग्यकी निस्पृहतायुक्त आभा दिखायी देती थी। उनकी आँखोंमें चैतन्यका तेज एवं चमत्कृति थी। उनकी मुखाकृति देखते ही ऐसा लगता था कि ये कोई महापुरुष हैं।

शास्त्रोंमें भरे हुए गहन भाव खोलनेकी गुरुदेवमें अजब शक्ति थी। उन्हें श्रुतकी लब्धि थी। व्याख्यानमें निकलते गंभीर भाव सुनते हुए कई बार ऐसा लगता था कि—'यह तो क्या श्रुतसागर उछल रहा है? ऐसे गंभीर भाव कहाँसे निकल रहे हैं?' गुरुदेव जैसी वाणी अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आई। उनकी अमृतवाणीकी झंकार कितनी मीठी थी?—मानों सुनते ही रहें। उनके जैसा आत्माका स्पर्श करके निकलता एक वाक्य भी कोई बोल नहीं सकता। अनुभवरससे सराबोर गुरुदेवकी जोरदार वाणीकी ललकार ही कुछ और थी;—पात्र जीवोंके पुरुषार्थको जागृत करे और मिथ्यात्वका चूरा कर दे ऐसी दैवी वाणी थी अपना भाग्य है कि गुरुदेवकी वह मंगलमय कल्याणकारी वाणी 'टेप'में उतरकर जीवन्त रही है।

कल्याणमूर्ति कृपालु गुरुदेवका हम सबके ऊपर अनन्त अनन्त उपकार है।

—बहिनश्री चंपाबेन

अध्यात्मयुगस्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्तांत और उपकारोंका गुणगान)

भरतक्षेत्रकी इस चौबीसीके चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट और भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव आदि निर्ग्रंथ संतोंके द्वारा सुरक्षित, तर्कशुद्ध अबाधित सुविज्ञान सिद्धांतोंकी कसौटीसे पार उतर सके ऐसा, अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म, कालदोषके कारण वैज्ञानिक भूमिका उपरसे च्युत होकर रुढ़िचुस्त सांप्रदायिकतामें और क्रियाकांडमें फँस गया था, ऐसे इस युगमें–विक्रमकी बीस-इक्कीसवीं सदीमें–भारत वर्षके जीवोंके महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने अवतार लेकर आत्मसाधनाके अध्यात्मपंथको प्रकाशित किया, सांप्रदायिक क्रियाओंकी कैदमेंसे बाहर निकालकर जिन्होंने हजारों जीवोंमें शुद्ध आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक नये मुमुक्षु समाजका सर्जन किया, स्वयंकी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञानकलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्योंको खोलकर जिन्होंने 'तुझमें सब भरा पड़ा है' ऐसा घोषित करके प्रत्येक जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटा—इत्यादि अनेक प्रकारसे भारतवर्षके धर्मपिपासु जीवोंके ऊपर जिनका अनंत-अनंत उपकार है वे अध्यात्मयुगस्रष्टा परमकृपालु परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका संक्षिप्त

[1]'जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन' यहाँ प्रस्तुत किया है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका पवित्र जन्म सौराष्ट्रके उमराला ग्राममें वि.सं. 1946 वैशाख शु. दूज रविवारके शुभ दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें हुआ था। गुरुदेवश्रीकी मातुश्री उजमबा और पिताश्री मोतीचंदभाई, जातिसे दशाश्रीमाली वणिक एवं धर्मसे स्थानकवासी जैन थे। बचपनसे ही उनके मुख पर वैराग्यकी सौम्यता और आखोंमें बुद्धि और वीर्यकी प्रतिभा झलकती थी। स्कूलमें एवं पाठशालामें प्रायः प्रथम नंबर रखते थे।

ग्यारह वर्षकी उम्रमें स्वयं एकबार जैन पाठशालाकी सीढ़ी उतरते थे उसी समय संप्रदायके एक साधुको वैराग्यकी मस्त चालसे जाते हुए देखकर इस होनहार महापुरुषके हृदयमें गहरी छाप पड़ी तथा अन्तर्मनमें ऐसा लगा कि–'अहा! ये कैसी वैराग्यकी धुन! नीचे नयन किये कैसी मस्त चाल! नितांत अकेले, कोई संग साथी नहीं। कैसी अद्भुत दशा!' इसप्रकार बचपनसे ही वैरागी मस्त जीवनके प्रति उनका चित्त समर्पित हो जाता था। पाठशालाके लौकिक ज्ञानसे उनको संतोष नहीं होता था; उनको अंतरंगमें लगता रहता था 'जिसकी खोजमें मैं हूँ वह यह नहीं'। कभी-कभी यह दुःख तीव्र हो जाता, और एक बार तो मातासे बिछुडे हुए बालककी भांति, वे बाल महात्मा सत्के वियोगमें खूब रोये थे।

छोटी उम्रमें ही माताका (वि.सं. 1959में) व पिताजीका (वि.सं. 1963 में) वियोग हुआ। वे पालेजमें पिताजीकी दुकान

1. जीवनवृत्तका कुछ भाग आदरणीय पं. श्री हिंमतभाई जे. शाहके लेखोंमेंसे शब्दशः लिया है।

पर बैठने लगे। व्यापारमें उनका वर्तन प्रामाणिक और सरल था। एक बार बड़ौदाकी अदालतमें जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीशके समक्ष सत्य घटना स्पष्टतासे बता दी। उनके मुख पर झलकती सरलता, निर्दोषता और निर्भीकताकी न्यायाधीश पर ऐसी छाप पड़ी, कि उनका कहा हुआ सारा विवरण यथार्थ है, ऐसा विश्वास आ जानेसे उसे संपूर्णरूपसे मान्य रखा।

वे कभी कभी नाटक देखने जाते थे, अतिशय आश्चर्यकी बात तो यह है कि नाटकका श्रृंगारिक प्रभाव होनेके बदले किसी वैराग्यप्रेरक दृश्यकी उनपर गहरी छाप पड़ती थी और वह कितने ही दिनों तक रहती थी। कभी कभी तो नाटक देखकर आनेके बाद पूरी रात वैराग्यकी धुन रहती। एकबार नाटक देखकर आनेके बाद उसकी धुनमें 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाला बारह कड़ीका एक काव्य उन्होंने बनाया था। अहा! सांसारिक रसके प्रबल निमित्तोंको भी महान आत्माएँ वैराग्यका कैसा निमित्त बना लेती है!

दुकान पर भी वे वैराग्यप्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। उनका मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनका आत्मा अन्दर कुछ और ही शोधमें था। उनके अन्तरका झुकाव सदा धर्म व सत्यकी शोधके प्रति ही था। उनका धार्मिक अभ्यास, उदासीन जीवन और सरल अंतःकरण देखकर सगे-सम्बन्धी उनको 'भगत' कहते थे। सगाईके संदेश आने पर उन्होंने अपने बड़े भाई खुशालभाईको स्पष्ट कह दिया कि 'मेरी सगाई नहीं करना, मेरे आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा है और मेरे दीक्षा लेनेके भाव है'। खुशालभाई और सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा बहुत समझाने पर भी उन महात्माके वैराग्यभीगे चित्तको संसारमें

रहना पसंद नहीं आया। उन्होंने योग्य गुरुके लिये बहुत शोध की। सौराष्ट्र, गुजरात व राजस्थानमें बहुतसे साधुओंसे मिले, पर कही भी मन स्थिर नहीं हुआ। अन्तमें बोटाद संप्रदायके श्री हीराचंदजी महाराजके हाथसे दीक्षा लेनेका निश्चित हुआ। विक्रम संवत 1970के मागशिर शु. 9वीं, रविवारके दिन उमरालामें बड़ी धूमधामसे दीक्षा-महोत्सव संपन्न हुआ।

दीक्षा लेकर तुरंत ही गुरुदेवश्री श्वेताम्बरके आगमोंका कड़ा अभ्यास करने लगे। उन्होंने चारेक वर्षमें 45 आगम, टीका सहित लाखों श्लोंकोंको विचारपूर्वक पढ़ लिया। वे संप्रदायकी रीति अनुसार चारित्र भी कठोर पालते थे। थोड़े ही समयमें उनकी आत्मार्थिताकी, ज्ञानपिपासाकी और उग्र चारित्रकी सुवास स्थानकवासी जैन संप्रदायमें खूब फैल गई थी।

गुरुदेवश्री प्रारंभसे ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ ही उनका जीवनमंत्र था। 'केवली भगवानने देखा होगा तब मोक्ष होगा'— ऐसी काललब्धि और भवितव्यताकी पुरुषार्थहीनता भरी बातें कोई करे तो वे सहन नहीं कर सकते थे। वे दृढ़तासे कहते थे कि जो पुरुषार्थी है उसके अनंत भव होते ही नहीं; केवली भगवानने भी उसके अनंत भव देखे ही नहीं। पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ बाधक नहीं होते।

दीक्षापर्यायके कालमें उन्होंने श्वेताम्बरके शास्त्रोंका खूब मननपूर्वक अभ्यास किया। उन्होंने टीकायुक्त एक लाख श्लोकप्रमाण भगवतीसूत्र सत्रहबार पढ़ा। हर कार्य करते समय उनका लक्ष्य सत्यकी शोधके प्रति ही रहता था। फिर भी वे जिसकी शोधमें थे वह उन्हें अभी तक नहीं मिला था, अथक्‌रूप उल्लासितवीर्यसे उनकी शोधवृत्ति चालू ही थी; तब–

विक्रम संवत 1978में विधिकी किसी धन्य घड़ीमें श्रीमद्भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत समयसार नामका महान ग्रंथ गुरुदेवश्रीके करकमलमें आया। उसे पढ़ते ही उनके हर्षका पार न रहा। जिसकी शोधमें वे थे वह उन्हें मिल गया। गुरुदेवश्रीके अन्तर्नयनोंने समयसारमें अमृतके सरोवर छलकते देखे। एकके पीछे एक गाथाएँ पढ़ते हुए उन्होंने घुँट भर-भरके वह अमृत पिया। ग्रंथाधिराज समयसारने गुरुदेवश्री पर अपूर्व, अलौकिक, अनुपम उपकार किया और उनके आत्मानंदका पार न रहा। गुरुदेवश्रीके अन्तर्जीवनमें परम पवित्र परिवर्तन हुआ, भूली हुई परिणति निज घरकी ओर ढली—उपयोगका प्रवाह सुधासिंधु ज्ञायकदेवकी ओर ढला। उनकी ज्ञानकला अपूर्व रीतिसे खिल उठी।

विक्रम संवत् 1991 तक स्थानकवासी संप्रदायमें रहकर गुरुदेवश्रीने सौराष्ट्रके अनेक प्रमुख शहरोंमें चातुर्मास किया। और शेषकालमें सैंकड़ों छोटे–बड़े नगरोंको पावन किया। हजारों श्रोताओंको उनके उपदेशके प्रति बहुमान जागृत हुआ। क्रियाकांडमें लुप्त हुए आध्यात्मधर्मका बहुत उद्योत हुआ। उनके प्रवचनमें ऐसे अलौकिक अध्यात्मिक न्याय आते थे कि जो अन्यत्र कहीं भी सुननेको न मिले हों। 'जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बंधे वह भाव भी हेय है।....शरीरके रोमरोममें तीव्र रोग हो तो भी वह दु:ख नहीं, दु:खका स्वरूप ही कुछ और है।.....व्याख्यान सुनकर बहुत जीव समझें तो मुझे बहुत लाभ हों ऐसा माननेवाले व्याख्याता मिथ्यादृष्टि है।....इस दु:खमें समता नहीं रखूँगा तो कर्मबंधन होगा—ऐसे भावसे समता रखना वह भी मोक्षमार्ग नहीं।....पाँच महाव्रत भी मात्र पुण्यबंधके कारण है।' ऐसे हजारों अपूर्व न्याय व्याख्यानमें अत्यंत स्पष्ट रीतिसे लोगोंको (वे) समझाते

थे। प्रत्येक प्रवचनमें वे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन पर अत्यंत अत्यंत भार देते थे। वे कहते थे कि—''शरीरकी चमड़ी उतारकर नमक छिडकनेवालेके ऊपर भी क्रोध न किया– ऐसा व्यवहारचारित्र भी इस जीवने अनंतबार पालन किया, परंतु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवोंकी हिंसाके पापसे भी मिथ्यादर्शनका पाप अनंतगुना है।....सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, लाखों करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यक्त्वका निर्णय स्वयं ही कर सकता है। सम्यग्दृष्टि संपूर्ण ब्रह्मांडके भावोंको पी गया होता है।....'सम्यक्त्व' वह कोई और ही वस्तु है।.... सम्यग्दर्शनशून्य क्रियाएँ बिना इकाईकी बिंदी हैं।....सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है।....हीरेकी कीमत तो हजारों रूपया होती है परंतु उसके पहल पाड़ते समय खिरी हुई रजका मूल्य भी सैंकड़ों रूपया होती है; वैसे सम्यक्त्व हीरेकी कीमत तो अमूल्य है, वह मिले तो कल्याण हो जाय परंतु न मिले तो भी 'सम्यग्दर्शन यह कोई जुदी ही वस्तु है'—इस प्रकार उसकी महिमा समझकर उसे प्राप्त करनेकी उत्कण्ठारूप रज भी बहुत लाभकारी है।....मात्र जानना ही ज्ञान नहीं। सम्यक्त्व सहित जानना वह ज्ञान है। ग्यारह अंग मुखाग्र हो परंतु सम्यग्दर्शन न हो तो वह अज्ञान है।....आजकल तो सभी अपने-अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे है। सम्यग्दृष्टिको तो मोक्षके अनंत अतीन्द्रिय सुखकी वानगी प्राप्त हो गई है। वही वानगी मोक्षसुखके अनंतवें भाग होने पर भी अनंत है।'' इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी अद्‌भुत महिमा अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टांतोंसे वे लोगोंको ठसा देते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। और वे संप्रदायमें थे तबसे ही इसका स्पष्ट रीतिसे प्रतिपादन करते थे।

प्रथम सत्य समझनेकी मुख्य आवश्यकता है ऐसा वे अति दृढ़तापूर्वक पहलेसे ही कहते थे और प्रवचनके प्रारंभमें एक गाथा बोलते थे—'संबुज्झहो जंतवो...' जिसका सारांश था कि हे जीवों! तुम सम्यक् प्रकारसे समझो! इस प्रकार वे प्रारंभसे ही सत्य समझनेका उपदेश देते थे।

जैनधर्म पर उनकी अनन्य श्रद्धा, सारा विश्व न माने तो भी अपनी मान्यतामें स्वयं अकेले टिके रहनेकी उनकी अजब दृढ़ता और अनुभवके बलपूर्वक निकलती उनकी न्यायसंगत वाणी बड़े बड़े नास्तिकोंको भी विचारमें डाल देती थी और बहुतोंको आस्तिक बना देती थी। उनका सिंहनाद पात्र जीवोंके हृदयकी गहराईको स्पर्शकर उनके आत्मिकवीर्यको उछाल देता था। अहा! सत्य और अनुभवके जोरसे सारे जगतके अभिप्रायोंके सामने जूझते इस अध्यात्मयोगीकी गर्जना जिन्होंने सुनी होगी उनके कानोंमें उनके प्रखर ज्ञान, कड़े चारित्र और प्रवचनकौशल्यकी सुवास इतनी अधिक फैल गई कि स्थानकवासी जैनसमाझ उनको साधुके रूपमें 'काठियावाड़का कोहनूर' कहती थी।

लघुवयसे ही गुरुदेवश्रीका वैरागी, चिन्तनपूर्ण, बुद्धि-प्रतिभायुक्त, ध्येयलक्ष्यी भक्तजीवन था। बालब्रह्मचारीरूपसे दीक्षित होकर उच्चतम कोटिके स्थानकवासी साधुके रूपमें विचरण करते समय, 'भवभ्रमणका अंत लानेका सच्चा उपाय क्या?' 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पायो, फिर पीछो पटक्यो, वहाँ क्या करना बाकी रहा?'—इस विषयमें गहरा मंथन व अभ्यास करके उन्होंने खोज निकाला कि— मार्ग कोई भिन्न ही है, वर्तमानमें तो शुरुआत ही उल्टी है। क्रियाकांड मोक्षमार्ग नहीं है, परंतु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप निश्चित कर

स्वानुभव करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूप-रमणता वह मुनिमार्ग है। साथमें होनेवाले बाह्य व्रत-नियम तो अधूरेपनकी–अपरिपक्वताकी प्रगटता है। मोक्षमार्गकी मूल बातमें बहुत बड़ा अंतर पड़ गया है ऐसा गुरुदेवश्रीने अंतरसे खोज निकाला।

समयसार-प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव और वास्तविक निर्ग्रंथमार्ग बहुत समयसे भीतर सत्य लगता था, और बाह्यमें वेश तथा आचरण अलग था,–वह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी; इसलिये उन्होंने सोनगढ़में योग्य समय—विक्रम संवत 1991की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर जयंती), मंगलवारके दिन—'परिवर्तन' किया, स्थानकवासी संप्रदायका त्याग किया। संप्रदायका त्याग करनेवालोंको किस किस प्रकारकी अनेक महा विपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं, उन पर कैसी कैसी अघटित निंदाकी झड़ीयाँ बरसती है, वह सब उनके ख्यालमें था, फिर भी उस निडर और निस्पृह महात्माने उसकी कुछ भी परवाह न की। सत्‌के प्रति परम भक्तिमें सब प्रकारकी प्रतिकूलताका भय व अनुकूलताका राग अत्यंत गौण हो गया। जगतसे बिलकुल निरपेक्षरूप हजारोंके जनसमुदायमें गर्जनेवाला सिंह सत्‌के लिये सोनगढ़के एकांत स्थलमें जा बैठा।

उनके 'परिवर्तन'से स्थानकवासी संप्रदायमें बहुत खलबली हुई, विरोध हुआ। परंतु गुरुदेवश्री काठियावाड़के स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे। उनके पीछे काठियावाड़ पागल बना हुआ था। इसलिये 'गुरुदेवश्रीने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा' ऐसा विचार कर धीरे-धीरे लोगोंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बहने लगा। सांप्रदायिक मोह अत्यंत दुर्निवार होने पर भी,

सत्‌के अर्थी जीवोंकी संख्या तीनोंकालमें अत्यंत अल्प होने पर भी, सांप्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भयको छोड़कर सोनगढ़की ओर बहता सत्संगार्थीजनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही गया।

पूज्य गुरुदेवश्री कहते थे : जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो वस्तुस्वभाव–आत्मधर्म है। उसका अन्य किसी धर्मके साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्मके साथ समन्वय करना वह रेशम और टाटके समन्वय जैसा व्यर्थ है। दिगम्बर जैनधर्म वही वास्तविक जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगम्बरत्वके बिना कोई जीव मुनिपना और मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

गुरुदेवश्री संप्रदायमें थे तभीसे प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रताकी श्रद्धा उनके अंतरमें ओतप्रोत हो गयी थी। 'मैं एक स्वतंत्र पदार्थ हूँ, मुझे कोई कर्म रोक नहीं सकते'—ऐसा वे बारंबार कहते थे। यह विशेष स्पष्टतासे समझनेके लिये जामनगरमें चातुर्मासके समय आत्मार्थी श्री हिंमतभाई जे. शाहने प्रश्न पूछा—'महाराज! दो जीवोंके 148 कर्मप्रकृति सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग—सभी बिलकुल समान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षणमें समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकारके?' गुरुदेवश्रीने कहा : 'भिन्न-भिन्न प्रकारके।' पुनः प्रश्न किया : 'दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूरी है और आवरण भी बिलकुल एक समान है, तो फिर भाव भिन्न भिन्न प्रकारके कैसे हो सकते हैं?' गुरुदेवश्रीने तुरंत ही दृढ़तासे उत्तर दिया : 'अकारण पारिणामिक द्रव्य है'; अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं ऐसे भावसे स्वतंत्रतया परिणमन करनेवाला द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव

स्वाधीनतासे करनेमें वस्तुतः कौन रोक सकता है? वह स्वाधीनतासे अपना सबकुछ कर सकता है। अहा! स्वाधीनताका कैसा सुन्दर स्पष्टीकरण!

परमपूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशमें मुख्य वजन 'समझ' पर था। 'तुम समझो; समझे बिना सब व्यर्थ है' इस प्रकार वे बारंबार कहते थे। 'ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी आत्मा एक रजकणको भी हिलानेकी सामर्थ्य नहीं रखता, तो फिर देहादिकी क्रिया आत्माके हाथमें कैसे हो? ज्ञानी व अज्ञानीमें प्रकाश और अंधकार जैसा महान अन्तर है, और वह यह है कि अज्ञानी परद्रव्य तथा रागद्वेषका—शुभाशुभ भावका—कर्ता होता है और ज्ञानी अपनेको शुद्ध अनुभव करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। उस कर्तृत्वबुद्धिको छोड़नेका महा पुरुषार्थ प्रत्येक जीवका कर्तव्य है। वह कर्तृत्वबुद्धि ज्ञान बिना नहीं छूटती। इसलिये तुम ज्ञान करो।'—यह उनके उपदेशका स्वर था।

परम पूज्य गुरुदेवश्रीके ज्ञानको सम्यक्त्वकी गुरुदेवश्रीकी छाप तो बहुत समयसे लगी थी। वह सुधास्यंदी सम्यग्ज्ञान सोनगढ़के विशेष निवृत्तिवाले स्थानमें अद्‍भुत सूक्ष्मताको प्राप्त हुआ; नई-नई ज्ञानकला खूब खिली। अमृतकलशमें जिस प्रकार अमृत घोला जाता हो उसीप्रकार गुरुदेवके परमपवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मामें तीर्थंकरदेवके वचनामृत खूब घोले गये—घोंटे गये। अन्दर घोंटा गया वह अमृत कृपालु गुरुदेवश्री हजारों मुमुक्षुओंको प्रवचनमें परोसते थे व निहाल करते थे।

समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्रों पर प्रवचन देते समय गुरुदेवश्रीके शब्द-शब्दमें बहुत गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती, जिससे श्रोताजन शास्त्रका मर्म सरलतासे

समझ जाते। जिस अनंत ज्ञान और आनंदमय पूर्णदशाको प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने दिव्यध्वनि द्वारा वस्तुस्वरूपका निरूपण किया, उस परम पवित्रदशाका सुधास्यंदी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रकट करके सद्गुरुदेवने अपनी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रोंमें रहे हुए गूढ़ रहस्योंको समझाकर मुमुक्षुओं पर महान-महान उपकार किया है। गुरुदेवश्रीकी वाणी सुनकर सैंकड़ों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे और उल्लासमें आकर कहते थे : 'गुरुदेव! आपके प्रवचन अपूर्व हैं; उनका श्रवण करते हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जिस बातको समझाओ हमको उसमेंसे नया-नया ही जाननेको मिलता है। नव तत्त्वका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, निश्चय-व्यवहारका स्वरूप या व्रत-तप-नियमका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस-जिस विषयका स्पष्टीकरण आपके श्रीमुखसे सुनते हैं उसमें हमें अपूर्व भाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। आपके शब्द-शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रकट होता है।'

पूज्य गुरुदेवश्रीकी प्रवचनशैली भी अद्भुत थी। कठिन गिने जानेवाले अध्यात्म-विषयको भी खूब स्पष्टतासे, अनेक सरल दृष्टांतों द्वारा, शास्त्रीय शब्दोंका बहुत ही कम प्रयोग करके घरेलु भाषामें समझाते थे, कि जिससे कम पढ़े-लिखे सामान्य लोग भी सरलतासे समझ जायें। गुरुदेवश्री प्रवचन करते-करते अध्यात्ममें ऐसे मग्न हो जाते, परमात्मदशाके प्रति अगाध भक्ति उनके

मुखारविंद पर ऐसी झलकती कि श्रोताओं पर भी उसकी छाप पड़ती। अध्यात्मकी जीवंतमूर्ति गुरुदेवश्रीकी देहके अणु-अणुसे मानों अध्यात्मरस झरता हो ऐसी चमत्कारभरी उनकी प्रतिभा थी। पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुननेवालोंको इतना तो स्पष्ट लगता था कि 'यह कोई विशिष्ट प्रकारका पुरुष है; जगत(की मान्यता)से यह कुछ अलग ही कहता है, अपूर्व कहता है; इसके कथनके पीछे कोई अजब दृढ़ता और जोर है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आया।' अहा! इस कलिकालमें, अन्तरमें ऐसा अलौकिक पवित्र परिणमन—केवलज्ञानका अंश, और बाह्यमें ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्वका अंश, इन दोनोंका सुयोग देखकर मुमुक्षुओंका हृदय नाच उठता था।

अहो! परम प्रभावक अध्यात्ममूर्ति गुरुदेवश्रीकी उस मोहविनाशिनी वज्रवाणीकी तो क्या बात, महापुण्यके थोक उछलें तब उनके दर्शन भी प्राप्त होवे! इस अध्यात्ममस्त महापुरुषके समीप संसारकी आधि-व्याधि-उपाधि फटक भी नहीं सकती थी। संसारतप्त प्राणियोंको उनके पवित्र समागममें परम विश्रांति मिलती थी। जो वृत्तियाँ महाप्रयत्नसे भी नहीं दबती वे पूज्य गुरुदेवश्रीके सान्निध्यमें अपने आप शांत हो जाती है—ऐसा अनुभव बहुतसे मुमुक्षुओंको होता था। आत्माका निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्षका सुख आदि आध्यात्मिक भावोंकी जो श्रद्धा अनेक तर्कोंसे नहीं हो पाती वह गुरुदेवश्रीके दर्शन तथा समागमसे सहजमात्रमें हो जाती। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीके स्वानुभवरसझरते पवित्र ज्ञान और चारित्रने मुमुक्षुओं पर महा कल्याणकारी अनुपम उपकार किया है।

सनातन सत्य वीतराग दिगंबर जैनमार्ग अंगीकृत करनेके बादके वर्षोंमें शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनवृत्तांतके साथ

सम्बन्ध रखनेवाले, मुमुक्षुओंको उपकारभूत हों ऐसे, प्रभावनाके अनेक सुयोग बन गये।

विक्रम संवत् 1993की चैत्र शुक्ला अष्टमीके दिन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको आत्मध्यानमयी विमल अनुभूतिमेंसे उपयोग बाहर आने पर उपयोगकी स्वच्छतामें अनेक भवांतर संबंधी सहज स्पष्ट जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूज्य गुरुदेवश्रीको अनेक वर्षोसे अपने भूत-भविष्य भवके साथ संबंधवाला जो अस्पष्ट 'भास' होता था। उसका स्पष्ट हल बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञान द्वारा मिलनेसे स्वयंके मनोमंदिरमें एक प्रकारका उजाला हुआ और उनकी धर्मपरिणतिको एक असाधारण नवीन बल मिला। बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानकी बातें आत्मार्थियोंको उपकारक हो ऐसी लगनेसे पूज्य गुरुदेवश्री उसके कितने ही तथ्य धीरे-धीरे मुमुक्षुओंके समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे थे, जिसे सुनकर आत्मार्थिजन अत्यन्त आह्लादित होते थे और उनके श्रद्धाजीवनमें, भक्तिजीवनमें तथा 'इस अल्पायुषी मनुष्यपर्यायमें निज कल्याण अवश्य कर लेना योग्य है'—ऐसे उद्यमजीवनमें नई चमक आ जाती थी।

जहाँ 'परिवर्तन' हुआ था वह मकान छोटा था। इसलिये भक्तोंने संवत् 1994में प्रवचन तथा पूज्य गुरुदेवश्रीके निवास हेतु एक मकान बनवाया और उसका नाम 'श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर' रखा। परम पूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवश्रीको समयसार परमागमके प्रति अतिशय भक्ति होनेके कारण, स्वाध्यायमंदिरमें उनके उद्घाटनके दिन–ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी, रविवारके दिन—प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके पवित्र करकमलोंसे श्री समयसार परमागमकी मंगल प्रतिष्ठा की

गई। समयसार सर्वोत्तम शास्त्र है—ऐसा गुरुदेवश्री बारंबार कहते थे। समयसारकी बात करते ही उन्हें अति उल्लास आ जाता था। समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष दे ऐसी है—ऐसा गुरुदेवश्री कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके सभी शास्त्रों पर उन्हें अत्यन्त प्रेम था। 'भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवका हमारे उपर अत्यन्त उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'—ऐसा वे अनेकबार भक्तिभीने हृदयसे कहते थे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ-वीतराग श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे, उस विषयमें पूज्य गुरुदेवश्रीको अंशमात्र भी शंका नहीं थी। वे कुंदकुंदाचार्यदेवके विदेहगमनके सम्बन्धमें अत्यंत दृढ़तापूर्वक अनेकबार भक्तिभीगे हृदयसे पुकार करके कहते थे कि—'कल्पना नहीं करना, इन्कार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानों तो भी ऐसी है, न मानों तो भी ऐसी ही है; यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमंधर भगवानके प्रति गुरुदेवश्रीको अतिशय भक्तिभाव था। कभी-कभी सीमंधर भगवानके विरहमें परम भक्तिवंत गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी।

पूज्य गुरुदेवश्रीने संवत 1995में माघ कृष्णा त्रयोदशीके दिन 200 मुमुक्षुओंके संघ सहित शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी पावन यात्रा अति उत्साह और भक्तिपूर्वक की। उसी वर्ष चैत्र कृष्णा एकमके दिन स्वाध्यायमंदिरमें भगवानकी दिव्यध्वनि 'ॐ'के शिलापट्टकी स्थापना की गई थी। तत्पश्चात् राजकोटके मुमुक्षुओंका अति आग्रह होनेसे चातुर्मास करनेके लिये पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे। वहाँ 'आनंदकुंज'में दस महिने तक रहकर समयसार, आत्मसिद्धि और पद्मनंदिपंचविंशतिका पर अपूर्व प्रवचन किये। पूज्य गुरुदेवश्रीकी नित्य-नई निर्मल ज्ञानपर्यायोंमेंसे सहज स्फुरित जड़-चेतन

विभागके, निश्चय-व्यवहारकी संधिके तथा अन्य अनेक आध्यात्मिक न्याय सुनकर राजकोटके हजारों लोग पावन हुए। वहाँ निशदिन आध्यात्मिक आनंदका सुंदर वातावरण गूँज उठा।

राजकोटसे सोनगढ़ वापिस लौटते समय पूज्य गुरुदेवश्रीने 300 भक्तोंके साथ, 22वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभुके दीक्षा, केवल और निर्वाण—तीन कल्याणकोंसे पावन हुए गिरराज गिरनारतीर्थकी अत्यन्त भक्ति तथा उल्लास सहित यात्रा की। पहली टोंक पर दिगम्बर जिनमंदिरमें एवं दीक्षाकल्याणक-धाम सहस्राम्रवनमें जमी हुई भक्तिकी धुन तथा निर्वाणस्थल पाँचवीं टूंक पर पूज्य गुरुदेवश्री परम अध्यात्मरसमें सराबोर बनकर—

'मैं एक शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!

—आदि पद गाते हुए भक्ति कराते थे उस समय प्रसरित हुआ भक्तिभीगा शांत आध्यात्मिक वातावरण–उन सबके पवित्र संस्मरण तो भक्तोंके स्मरणपट पर उत्कीर्ण हो गये हैं।

विहारके समय मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े गाँवोंमें पूज्य गुरुदेवश्री वीतराग सद्धर्मका डंका बजाते गये। लोगोंको गुरुदेवश्रीके प्रति भक्ति उमड़ पड़ती, भव्य स्वागत-समारोह होते और हजारोंकी संख्यामें प्रवचनसभा छलक उठती। गुरुदेवश्रीका प्रभावना-उदय देखकर, तीर्थंकर भगवान तथा समर्थ आचार्य भगवंत जब विचरते होंगे उस समय धर्मका, भक्तिका व अध्यात्मका कैसा वातावरण फैल जाता होगा उसका तादृश चित्र कल्पनाचक्षु समक्ष खड़ा होता था।

संवत् 1996के वैशाख मासमें पूज्य गुरुदेवश्री विहार पूर्ण कर सोनगढ़ पधारे। उसके बाद तुरंत ही श्री नानालालभाई

जसाणी तथा उनके भाईयोंने श्री सीमंधरभगवानके जिनमंदिरका निर्माणकार्य प्रारंभ किया, जिसमें श्री सीमंधरस्वामी आदि जिनभगवंतोंकी वीतराग-भाववाही प्रतिमाओंकी पंचकल्याणकविधिपुरस्सर मंगल प्रतिष्ठा संवत् 1997के फाल्गुन शुक्ला दूजके शुभ दिन हुई। प्रतिष्ठा महोत्सवके आठों दिन पूज्य गुरुदेवश्रीके मुखारविंदसे भक्तिरसभीनी अलौकिक वाणी छूटती थी। बिछुड़े हुए सीमंधरभगवानका (भले स्थापना-अपेक्षासे) मिलन होनेसे पूज्य गुरुदेवश्रीको कोई अद्‌भुत आनंदोत्साह था। प्रतिष्ठाके पूर्व श्री सीमंधरभगवानकी प्रतिमाके प्रथम दर्शनके समय पूज्य गुरुदेवश्रीकी आँखोंसे विरहवेदनाके आँसू बहने लगे थे। सीमंधरभगवान जब मंदिरमें प्रथम पधारे तब गुरुदेवश्रीको भक्तिरसकी मस्ती चढ़ गई और सारा देह भक्तिरसके मूर्त स्वरूप जैसा शांत-शांत दिखने लगा। गुरुदेवश्रीसे साष्टांग प्रणमन हो गया और भक्तिरसमें अत्यंत एकाग्रताके कारण शरीर ज्योंका त्यों थोड़े समय तक निश्चेष्टरूपसे पड़ा रहा। भक्तिका यह अद्‌भुत पावन दृश्य, पासमें खड़े मुमुक्षुओंसे सहा नहीं जाता था; उनके नेत्रमें भी अश्रु भर आये और चित्तमें भक्ति उमड़ पड़ी। पूज्य गुरुदेवश्रीने प्रतिष्ठा भी अपने पवित्र हस्तसे, भक्तिभावमें मानों शरीरका भान भूल गये हों–ऐसे अपूर्व भावसे की थी।

दोपहरके प्रवचनके बाद पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें इस जिनमंदिरमें प्रतिदिन पौनघंटा भक्ति होती थी। प्रवचन सुनते समय आत्माके सूक्ष्म स्वरूपके प्रणेता वीतराग जिनेन्द्रभगवंतका माहात्म्य हृदयमें स्फुरित हुआ हो, जिससे तुरंत ही जिनमंदिरमें भक्ति करते हुए, वीतरागदेवके प्रति पात्र जीवोंको अद्‌भुत भक्तिभाव उल्लसित होता था। इस प्रकार जिनमंदिर ज्ञान व भक्तिके सुन्दर सुमेलका निमित्त बना।

इसके एक साल बाद श्री समवसरण-मन्दिर बना। उसमें श्री सीमंधरभगवानकी अतिशय भाववाही चतुर्मुख जिनप्रतिमा बिराजमान है। समवसरणकी सम्पूर्ण रचना अत्यंत आकर्षक और शास्त्रोक्त विधि अनुसार है। मुनियोंकी सभामें श्री सीमंधरभगवानके सामने अत्यंत भावपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रीमद्‌भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवकी अति सौम्य मुद्रावंत निर्ग्रंथ प्रतिमा है। प्रतिष्ठा सं. 1998के ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन हुई थी। श्री समवसरणके दर्शन करते समय, श्रीमद्‌भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव विदेहक्षेत्रके तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर परमात्माके समवसरणमें पधारे थे वह, पूज्य गुरुदेवश्रीने पूर्वभवमें प्रत्यक्ष देखा हुआ भव्य प्रसंग उनकी आँखोंके समक्ष खड़ा हुआ और उसके साथ संकलित अनेक पवित्र भाव हृदयमें स्फुरित होनेसे उनका हृदय भक्ति और उल्लाससे भर आया। समवसरणमें भक्तिके समय 'रे! रे! सीमंधरनाथना विरहा पड्या आ भरतमां' यह पंक्ति आने पर, भगवानके विरह-वेदनासे पूज्य गुरुदेवश्रीका भक्तहृदय अत्यंत द्रवीभूत हो गया था और नेत्रोंमेंसे अश्रुकी धारा बह निकली थी; उस विरहव्यथाका भक्तिभीना दृश्य अभी भी मुमुक्षुओंकी दृष्टि समक्ष घूमता है। श्री समवसरणमंदिर बननेसे मुमुक्षुओंको समवसरणमें बिराजमान जिनेन्द्र भगवानके पावन दर्शनके साथ साथ सीमंधर-कुन्दकुन्द मिलनका मधुर प्रसंग दृष्टिगोचर करनेका निमित्त प्राप्त हुआ।

वि.सं. 1998के श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके रोज—श्री महावीरभगवानकी दिव्यध्वनि छूटनेके पावन दिन, वीरशासन–जयंतीके मंगलदिन—सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवश्रीने परमागम श्री प्रवचनसार पर व्याख्यान देना प्रारंभ किया था। उसमें ज्ञेय-अधिकार पर व्याख्यान देते समय, अनेक वर्षोंमें भक्तोंने जो सुना

था उससे भी अधिक, कोई अचिंत्य, अद्‌भुत और अपूर्व ऐसे श्रुतका स्रोत पूज्य गुरुदेवश्रीके अन्तर आत्मामेंसे—उनकी निर्मल भावश्रुतज्ञानकी पर्यायमेंसे—बहने लगा। द्रव्यानुयोगके अश्रुतपूर्व अद्‌भुत न्यायोंसे भरा हुआ वह आश्चर्यकारी स्रोत जिन्होंने बराबर श्रवण किया होगा उनको उसकी महिमा अंतरंगमें अंकित होगी। बाकी उसका वर्णन तो क्या हो सके? उस श्रुतामृतका पान करते समय ऐसा लगता था कि यह कोई सातिशय आश्चर्यकारी आत्मविभूति देखनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो! या कोई अचिंत्य श्रुतकी निर्मल श्रेणी देखनेका सुभाग्यमें प्राप्त न हुआ हो!

सं. 1998की भाद्रपद शुक्ला पंचमीको–दशलक्षण पर्युषणपर्वके प्रारंभके दिन–सोनगढ़में कुमार जैन युवकोंके लिये, तत्त्वज्ञानका अभ्यास करानेके प्रयोजनसे, ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किया गया। उसमें तीन वर्षका अभ्यासक्रम रखा गया था। उसमें शामिल होनेवाले ब्रह्मचारी भाई प्रतिदिन तीन घंटे नियत की हुई धार्मिक पुस्तकोंका शिक्षण प्राप्त करते थे, प्राप्त किये हुए उस शिक्षणको एकांतमें स्वाध्याय और परस्पर चर्चा द्वारा दृढ़ करते थे व पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जिनेन्द्रभक्ति इत्यादिक दैनिक क्रममें सम्मिलित होते थे; इसप्रकार सारा ही दिन धार्मिक प्रवृत्तिमें व्यतीत होता था।

ज्ञानध्यानरत गुरुदेवश्रीको अंतरमें भावश्रुतकी लब्धि नये-नये न्यायोंसे जैसे-जैसे दिन-प्रतिदिन खिलती जा रही थी वैसे-वैसे उनका पुनीत प्रभावना-उदय भी प्रबलरूपसे वृद्धिगंत होता जा रहा था। सं. 1999की फाल्गुन शुक्ला पंचमीके दिन झालावाड़ होकर चातुर्मास हेतु राजकोट जानेके लिये पुनः विहार हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री अमृत-बरसते महामेघकी भांति, मार्गमें आनेवाले हरेक

ग्राममें अध्यात्म-अमृतकी झड़ी बरसाते थे और अनेकों–हजारों-तृषावंत जीवोंकी तृषा शांत करते थे। जैनेतर भी पूज्य गुरुदेवश्रीका आध्यात्मिक उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। जैनदर्शनमें मात्र बाह्य क्रियाकांड ही नहीं है किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा है ऐसा समझमें आने पर उन्हें जैनदर्शनके प्रति बहुमान प्रकटता था। पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रसारित आत्मविचारके प्रबल आन्दोलनोंसे प्रभावित होकर कितने ही अजैन तो वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके श्रद्धालु हो गये थे। सचमुच गुरुदेवश्रीने आत्मसाधनाका अध्यात्म-पंथ दरशाकर भारतमें तथा विदेशमें हजारों जीवोंको जागृत किया है। सौराष्ट्रमें तो दिगम्बर जैनधर्मका उन्हींने नवसर्जन किया है। पूज्य गुरुदेवश्रीने अंतरसे खोजा हुआ स्वानुभवप्रधान अध्यात्ममार्ग— दिगम्बर जैनधर्म ज्यों-ज्यों प्रसिद्ध होता गया, त्यों-त्यों अधिकाधिक जिज्ञासु आकर्षित हुए, ग्राम-ग्राममें मुमुक्षुमंडलोंकी स्थापना हुई। सम्प्रदायत्यागसे जगी विरोधकी आंधी शांत हो गई। पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रभावना-उदय दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होता गया।

मात्र बड़ी उम्रके गृहस्थ ही नहीं किन्तु छोटी उम्रके बच्चे भी पूज्य गुरुदेवश्रीके तत्त्वज्ञानमें उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। गुरुदेवश्रीके भक्त हजारोंकी संख्यामें बढ़ने लगे। संवत् 1997से प्रतिवर्ष विद्यार्थीओंको धार्मिक शिक्षा देने हेतु ग्रीष्मशिबिर खोला जाता था, विद्यार्थी उसमें उत्साहसे भाग लेते थे, लिखित परीक्षाएँ ली जाती और पुरस्कार दिये जाते। सं. 2003से श्रावण मासमें प्रौढ गृहस्थोंके लिये भी शिक्षणशिबिर चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके भक्त देश-विदेशमें जगह-जगह निवास

करते हैं, उन्हें गुरुदेवश्रीके अध्यात्म-उपदेशका नियमित लाभ प्राप्त हो तदर्थ सं. 2000के मगसिर महिनेसे 'आत्मधर्म' गुजराती मासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् करीब डेढ़ वर्ष बाद हिन्दी 'आत्मधर्म'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। बीचमें कुछेक वर्षों तक 'सद्‌गुरु-प्रवचन-प्रसाद' नामका दैनिक प्रवचन-पत्र प्रकाशित होता था। तदुपरांत समयसार, प्रवचनसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-ग्रन्थ इत्यादि अध्यात्मसाहित्यका विपुलमात्रामें—लाखोंकी संख्यामें—प्रकाशन हुआ, हजारों प्रवचन टेप-रेकार्ड किये गये, जिनसे पूज्य गुरुदेवश्रीका अध्यात्म-उपदेश घर-घरमें गूंजने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्रीके मंगल प्रतापसे सोनगढ़ 'अध्यात्म तीर्थधाम'के रूपमें बदल गया। सोनगढ़का शांत अध्यात्ममय वातावरण और वैविध्यपूर्ण धार्मिक कार्यक्रम देखकर बाहरसे आनेवाले जिज्ञासु मुग्ध हो जाते थे। सोनगढ़में उत्सव, मात्र रूढ़िगत शैलीसे नहीं किन्तु तदनुरूप भावभीने वातावरणमें एक विशिष्ट अनोखी शैलीसे मनाये जाते थे। कुछ दिन यहाँ रहनेवाले जिज्ञासुओंको फिर कहीं और जगह जाना अच्छा नहीं लगता था और उसे ऐसा लगता था कि—वास्तवमें आत्मार्थीकी अध्यात्म-साधनाका पोषक एवं प्रोत्साहक शांत धार्मिक वातावरण गुरुदेवश्रीके इस पवित्रधाम जैसा अन्यत्र कहीं नहीं है।

सं. 2001की ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन दिगम्बर जैन समाजके सुप्रसिद्ध अग्रिम नेता, इन्दौरके श्री सेठ हुकमचन्दजी पूज्य गुरुदेवश्रीकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर गुरुदेवश्रीके दर्शन तथा सत्संग हेतु सोनगढ़ आये। वे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुनकर एवं भक्ति आदिका अध्यात्मरसयुक्त वातावरण देखकर

अत्यन्त प्रभावित हुए। पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रीमुखसे विशिष्ट बातें सुनकर तथा समवसरणकी रचना देखकर उन्हें अति प्रसन्नता हुई। श्री सेठ हुकमचन्दजीके आनेके बाद दिगम्बर समाजका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष बढ़ने लगा।

धीरे-धीरे सोनगढ़ एक अध्यात्मविद्याका अनुपम केन्द्र—तीर्थधाम बन गया। बाहरसे हजारों मुमुक्षु भाई बहिन, दूर-दूरसे अनेक दिगम्बर जैन, पण्डित, त्यागी, ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशका लाभ लेने हेतु आने लगे।

पूज्य गुरुदेवश्रीका पावन प्रभावना-उदय बढ़ता गया, जिज्ञासुओंकी आना बढ़ता गया, उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमंदिर छोटा लगने लगा। इसलिये जिसमें ढाई हजार लोग अच्छी तरहसे बैठकर प्रवचन सुन सके ऐसा विशाल, बीचमें खम्भे रहित, अनेक पौराणिक सुन्दर चित्रों एवं तत्त्वबोधक सुन्दर सैद्धान्तिक सुवाक्योंसे सुशोभित 'श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन मण्डप'का निर्माण हुआ। संवत् 2003की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाके दिन उसका उद्घाटन करते हुए श्री सेठ हुकमचन्दजी आनन्दविभोर होकर बोले कि—'मेरे हृदयमें ऐसा भाव आ जाता है कि अपनी सारी सम्पत्ति इस सद्धर्मकी प्रभावना हेतु न्योछावर कर दूँ तब भी कम है'।

तत्पश्चात् फाल्गुन शुक्ला तीजके दिन वींछिया ग्राममें, सोनगढ़के बाद सर्वप्रथम दिगम्बर जिनमन्दिरका श्री सेठ हुकमचन्दजीके शुभ हस्तसे शिलारोपण हुआ।

संवत् 2003 की चैत्र-कृष्णा तीजको सोनगढ़में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषदका वार्षिक अधिवेशन पं. श्री कैलाशचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री (बनारस)की अध्यक्षतामें हुआ। उस अधिवेशनका प्रसंग अत्यंत प्रभावशाली ता। सोनगढ़का अध्यात्ममय

वातावरण देखकर तथा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा हो रही दिगम्बर जैनधर्मकी अध्यात्म-तत्त्वप्रचार-प्रभाव–अभिवृद्धिको देखकर सभी विद्वान खूब ही प्रभावित हुए थे।

पूज्य गुरुदेवश्रीका समग्र जीवन ब्रह्मचर्यके अद्‌भुत तेजसे देदीप्यमान था। उनको पहलेसे ही ब्रह्मचर्यका असीम प्रेम था। दीक्षित पर्यायमें उन्हें मात्र शास्त्र-स्वाध्याय एवं तत्त्वचिंतनकी ही धुन रहती थी। चारित्रका पालन भी वे सख्तीसे करते थे; स्त्रियोंके प्रति न तो वे कभी दृष्टि डालते और न ही कभी उनसे वार्तालाप करते थे। सम्प्रदायमें एकबार उनके गुरुने कहा : 'कानजी! इस बहिनको शास्त्रकी गाथा समझा दो'। पूज्य गुरुदेवश्रीने उनकी बातका अस्वीकार करते हुए सविनय कहा कि—'महाराज! स्त्रियोंके सम्पर्कमें आना पड़े ऐसा कोई कार्य मुझे कभी न सोंपे'। अहा! कैसा प्रबल वैराग्य! ब्रह्मचर्यका कैसा अद्‌भुत रंग! पूज्य गुरुदेवश्री, स्त्रियोंके प्रति उपेक्षावृत्तिसे, मात्र पुरुषोंकी सभा पर दृष्टि जाय इस प्रकार, प्रवचनमें कुछ टेढ़े पुरुषाभिमुख बैठते थे; स्त्रियोंको न तो कभी सम्बोधन करते और न उनके साथ कभी प्रश्नोत्तर। दो बारके प्रवचनोंके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि पुरुषोंके कार्यक्रममें स्त्रियोंको आनेका सख्त प्रतिबंध था। पुरुषोंके धार्मिक शिबिरोंमें भी स्त्रियोंको बैठनेकी गुरुदेवश्री सख्त मनाई करते थे। अकेली तो नहीं, किन्तु एकसे अधिक स्त्रियाँ भी साथमें पुरुषकी उपस्थितिके बिना, उनके दर्शन करने नहीं आ सकती थी। कोई स्त्रियाँ भूलसे भी यदि, दो प्रवचन तथा जिनेन्द्रभक्तिके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि अन्य कार्यक्रमोंमें आ जाएँ, तो पूज्य गुरुदेवश्री जोरसे निषेध करते और उन्हें स्थान छोड़कर चले जानेको बाध्य होना पड़ता।

स्वानुभवसमृद्ध-शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेवश्रीके ब्रह्मचर्यकी छाप समाज पर खूब पड़ती थी। उनके ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर निज हितार्थ कुछ कुमार भाईयोंने, अनेक कुमारिका बहिनोंने तथा अनेक दम्पत्तियोंने आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ली थी।

सं. 2005, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन छह कुमारिका बहिनोंने पूज्य गुरुदेवश्रीके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार की। बादके वर्षोंमें क्रमशः ऐसी ही अन्य चौदह, आठ, नौ एवं ग्यारह कुमारिका बहिनोंने एक साथ, तथा अलग-अलग अन्य अनेक कुमारिका बहिनोंने भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर, पूज्य गुरुदेवश्रीके समक्ष ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली। अहा! वास्तवमें इस भौतिक विलासप्रचुर युगमें वीतरागविज्ञानके अध्ययन हेतु प्रशममूर्ति स्वात्मज्ञ पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी कल्याणकारी शरणमें जीवनको वैराग्यमें ढालनेका यह अनुपम आदर्श पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनीत प्रभावनायोगका एक विशिष्ट अंग है।

गुरुदेवश्रीका प्रभाव एवं अध्यात्मका प्रचार भारतमें शीघ्रतासे फैलने लगा। सौराष्ट्रमें जगह-जगह दिगम्बर जिनमन्दिरोंकी तैयारी होने लगी। लोगोंकी जिज्ञासा बढ़ती गई और अधिकाधिक जिज्ञासु सोनगढ़ आकर लाभ लेने लगे।

पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनीत प्रभावसे सौराष्ट्र-गुजरातमें दिगम्बर जैनधर्मके प्रचारका एक अद्‌भुत अमिट आन्दोलन फैल गया। जो मंगल कार्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने गिरनार पर वादके समय किया था उसी प्रकारका दिगम्बर जैनधर्मकी सनातन सत्यताकी प्रसिद्धिका गौरवपूर्ण कार्य अहा! पूज्य गुरुदेवश्रीने श्वेताम्बरबहुल प्रदेशमें रहकर अपने स्वानुभूतिमुद्रित सम्यक्त्वप्रधान सदुपदेश

द्वारा हजारों स्थानकवासी-श्वेताम्बरोंमें श्रद्धाका परिवर्तन लाकर सहजरूपसे तथापि चमत्कारिक ढंगसे किया। सौराष्ट्रमें नामशेष हो गये दिगम्बर जैनधर्मके—पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनायोगसे जगह-जगह निर्मित दिगम्बर मन्दिर, उनकी मंगल प्रतिष्ठाएँ तथा आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा हुए—पुनरुद्धारका युग आचार्यवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके मन्दिर निर्माण-युगका स्मरण कराता है। अहा! कैसा अद्‌भुत आचार्यतुल्य उत्तम प्रभावनायोग!

पूज्य गुरुदेवश्रीने दो-दो बार विशाल मुमुक्षु-संघ सहित की पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा उस अरसेमें पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रीमुखसे प्रवाहित सत्यतत्त्व-प्रकाशक प्रवचनों द्वारा हुई अभूतपूर्व प्रभावनाकी तो बात ही क्या! गाँव-गाँवमें भव्य स्वागत, चौराहे-चौराहे पर बधाई, उमड़ता हुआ मानवसमुदाय, श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते अभिनन्दन-समारोह;—जैन जनतामें धर्मोत्साहकी ऐसी लहर फैल जाती मानों तीर्थंकरभगवानका समवसरण आया हो! गुरुदेवश्रीकी अध्यात्मतत्त्व सम्बन्धी गर्जना सुनकर विरोधी काँप उठते; हजारों जिज्ञासुओंके हृदय प्रभावित होकर नाच उठते। अहा! तीर्थयात्राके दौरान हुई धर्मप्रभावनाका आनन्दोल्लासकारी चित्र प्रत्यक्षदर्शी मुमुक्षुओंके स्मृतिपट पर आज भी अंकित है।

अहो! उस अभूतपूर्व यात्राका क्या वर्णन हो सके! गुरुदेवश्री जहाँ-जहाँ पधारते वहाँ ऐसा भव्य स्वागत होता कि वहाँकी अजैन जनता भी आश्चर्यमग्न हो जाती और प्रमोदमें बोल उठती कि—अहा! कौन है यह सन्त पुरुष? अपनी नगरीमें हमने ऐसा भव्य और विशाल स्वागत नहीं देखा। इन्दौरमें हुआ असाधारण भव्य स्वागत तो विशिष्टरूपसे अविस्मरणीय है। पूज्य

गुरुदेवश्रीके मंगल पदार्पणसे सर सेठ हुकमचन्दजी तो अत्यन्त आनन्दित हुए थे और उन्होंने अति आनन्दविभोर होकर हाथी-घोड़े तथा उनका सोने-मखमलका सारा कीमति साज-सामान पूज्य गुरुदेवश्रीकी स्वागतयात्राकी विशिष्ट शोभा हेतु निकालनेका अपने लोगोंको आदेश दिया था। इन्दौरमें हुए पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन भी कोई अद्भुत थे। पण्डित, त्यागी और समाज खूब प्रभावित हुए थे।

सं. 2013, फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन पूज्य गुरुदेवश्रीने लगभग दो हजार भक्तों सहित श्री सम्मेदशिखरकी जीवनमें प्रथमबार यात्रा की। (दूसरी बार सं. 2023में की।) अहा! पहली टोंक पर—श्री कुन्थुनाथ भगवानकी टोंक पर—पूज्य गुरुदेवश्रीने सम्मेदशिखर तीर्थकी, वहाँसे मोक्ष पधारे तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियोंकी, निर्वाणधामके रूपमें सम्मेदशिखरकी शाश्वतताकी एवं तीर्थयात्राकी, अध्यात्मसाधनाके साथ सुसंगत जो अद्भुत महिमा बतलायी थी उस मधुर प्रसंगका सुस्मरण आज भी भक्तोंको आनन्दित कर देता है। मधुवनमें पाँचेक हजार श्रोताओंकी सभामें जो अद्भुत प्रवचनधारा बहती उसमें विद्वान तथा त्यागी भी प्रभावित होते थे। इन्दौरनिवासी पं. बंशीधरजी न्यायाचार्यने अपने भावभीने भाषणमें गद्गद्भावसे साहसपूर्वक समाजसे स्पष्ट कहा था कि–अनंत चौबीसीके तीर्थंकरों तथा आचार्योंने सत्य दिगम्बर जैनधर्मको अर्थात् मोक्षमार्गको प्रगट करनेवाला जो संदेश दिया था वह इन कानजीस्वामीकी वाणीमें हमें सुनाई दे रहा है।

सं. 2015में करीब सातसौ भक्तों सहित गुरुदेवश्रीने दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी मंगल यात्रा हेतु प्रस्थान किया। कुन्दाद्रि, रत्नप्रतिमाओंका धाम मुडबिद्री, विश्वविख्यात बाहुबलिधाम—

श्रवणबेलगोला, कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी तपोभूमि पोन्नूर आदि दक्षिण भारतके तथा मध्य भारतके अनेक तीर्थधामोंकी अति आनन्दपूर्वक मंगल यात्रा की। प्रवासके मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े नगरोंमें अध्यात्मविद्याकी वर्षा की। गाँव-गाँवमें भव्य स्वागत एवं अभिनन्दन समारोह हुए। पूज्य गुरुदेवश्रीके दक्षिण भारतमें पदार्पणसे वहाँका समाज अति आनन्दित हुआ था और लोग उल्लास व्यक्त करते थे कि—जिस प्रकार श्री भद्रबाहुस्वामी हजारों शिष्यों सहित उत्तर भारतसे पधारे थे, उसी प्रकार अहा! श्री कानजीस्वामी हजारों भक्तों सहित पश्चिम भारतसे दक्षिण भारतमें पधारे और धर्मका महान उद्योत किया। (वि.सं. 2020में दक्षिण भारतकी दूसरी बार यात्रा की थी।)

अध्यात्ममूर्ति स्वानुभूतिसम्पन्न पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनागगनके धर्मोद्योतकारी अपार प्रसंगसितारेको गिननेसे गिना नहीं जा सकता। एक घटना याद करो और दूसरी भूलो—ऐसी तो अनेक अद्भुत शासनप्रभावनापूर्ण घटनाओंसे पूज्य गुरुदेवश्रीका जीवन विभूषित है। सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवश्रीके पावन सत्समागम तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र छायामें अध्यात्मतत्त्वाभ्यासपूर्वक जीवन जीने हेतु, गुरुदेवश्रीके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार करके, रहनेवाली कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंके लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविकाब्रह्मचर्याश्रम'की स्थापना हुई; संगमरमरनिर्मित गगनचुम्बी भव्य मानस्तंभ, श्री महावीर भगवानके विशाल भव्य जिनबिम्बयुक्त तथा समयसारादि परमागमोंकी सुन्दर कारीगरीसे अत्यन्त सुशोभित अनुपम एवं अद्भुत 'श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममंदिर' आदिके निर्माणकार्य हुए तथा उनके प्रतिष्ठामहोत्सव मनाये गये; सौराष्ट्र, गुजरात और हिन्दीभाषी

प्रदेशोंमें अनेक नगरों एवं ग्रामोंमें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई, दिगम्बर जिनमंदिर तथा समवसरण आदि रचे गये और उनकी भव्य प्रतिष्ठाएँ हुई; तथा विदेश (नाईरोबी) प्रवास और वहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरोंकी भव्य प्रतिष्ठा तथा अध्यात्मतत्त्वोपदेश द्वारा सनातन सत्य जैनधर्मका प्रचार हुआ।—इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीके पावन प्रभावना उदययोगमें विविधरंगी धर्मोद्योत हुआ। अहा! पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा हुए धर्मप्रभावनाके उन पावन प्रसंगोंके संस्मरण आज भी भक्तोंके तनको रोमांचित तथा मनको प्रफुल्लित कर देते हैं! वास्तवमें पूज्य गुरुदेवश्रीने इस युगमें एक प्रभावक आचार्य जैसा अद्भुत एवं अनुपम कार्य किया है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनीत प्रतापसे सोनगढ़का जीवन ही जगतसे निराला था। प्रतिदिन प्रातः देव-गुरुके दर्शन, जिनेन्द्रपूजा, दो बार पूज्य गुरुदेवश्रीके अध्यात्मरसझरते प्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति, भगवानकी आरती और तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम नियमित चलते थे; तदुपरांत सत्साहित्यकी—मूल शास्त्रों तथा प्रवचनोंकी—लाखों पुस्तकें और 'आत्मधर्म' पत्र प्रकाशित हुए। सोनगढ़में तथा सौराष्ट्र, गुजरात और भारतके अन्य नगरोंमें अनेक पंचकल्याणकपुरस्सर जिनबिम्ब-प्रतिष्ठाएँ, वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई। उस हेतु तथा तीर्थयात्रादिके निमित्तसे भारतवर्षमें अनेकबार पूज्य गुरुदेवश्रीके जिनशासनप्रभावकारी मंगलविहार हुए, लाखों लोगोंने पूज्य गुरुदेवश्रीकी अश्रुतपूर्व अध्यात्मदेशना श्रवण की और हजारों लोगोंमें धार्मिक रुचि उत्पन्न हुई। इस तरह विधविध प्रकारसे कल्पनातीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेवश्री द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना प्रयत्नके साहजिक रीतिसे हुआ है। गुरुदेवश्रीने धर्मप्रभावनाके लिये किसी योजनाका

विचार नहीं किया था। मन्दिर बनवानेकी, प्रतिष्ठाएँ करानेकी, पुस्तकें छपवानेकी या धार्मिक शिक्षण-शिबिर चलानेकी—ऐसी किसी प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें वे कभी नहीं पड़ते थे। वह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। मुनिको कोई कर्मप्रक्रमके परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रवृतिका कार्यभार नहीं लेते—इस प्रवचनसारकी बातका विवरण करते हुए, मानों अपने हृदयकी बात शास्त्रमेंसे निकल आयी हो इस प्रकार, वे बड़े प्रफुल्लित हो उठते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था। जगत-जगतकी जाने, मुझे अपना कार्य करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' यह कबीरने गाया है परन्तु गुरुदेवको तो जीवित ही 'मेरे लिये कोई है नहि दुनिया' ऐसी परिणति जीवनमें ओतप्रोत हो गई थी। अहा! कैसी आश्चर्यकारी निस्पृह दशा!

उन्होंने जो सुधाझरती आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किया था, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' ऐसे विविध प्रकारसे सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती, जिसकी गहरी आत्मार्थप्रेरक छाप श्रोताओंके हृदयपट पर अंकित हो जाती। मुख्यतया इस प्रकार उनके द्वारा सहजरूपसे धर्मका उद्योत हो गया था।

पूज्य गुरुदेवश्रीके निमित्तसे ऐसी प्रबल बाह्य प्रभावना होने पर भी वह स्वयं सहजरूपसे हो गई थी। गुरुदेवश्रीको बाह्यमें किंचित् मात्र रस नहीं था। उनका जीवन तो आत्माभिमुख था। उनका दैनिक क्रम प्रायः निज ज्ञान, ध्यान एवं शास्त्रस्वाध्यायमें व्यतीत होता था। देवदर्शन, शास्त्रप्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति और तत्त्वचर्चाके सिवा अन्य प्रवृत्तिके प्रति उपेक्षाभाव वर्तता था। न

कभी किसीके साथ इधर-उधरकी बातें करते और न कभी पुस्तक-प्रकाशनादि बाह्य कार्योंमें रुचि बतलाते। गुरुदेवश्रीकी परिणति ऐसी आत्मोन्मुख एवं वैराग्यपरिणत थी कि उन्हें सरस-नीरस आहारके प्रति लक्ष्य भी नहीं जाता था। वे हमेशा सादा आहार लेते थे। जो भी आहार आये उसे उपेक्षित एवं उदासभावसे ग्रहण कर लेते थे। उनका जीवन मात्र आत्माभिमुख था। वे जगतसे बिलकुल उदास-उदास थे। गुरुदेवश्रीके परम पावन आदर्शजीवनसे, उनकी पवित्र आत्मसाधनासे, प्रभावित होनेके कारण जिज्ञासुओंके दल हजारोंकी संख्यामें पूज्य गुरुदेवश्रीकी अध्यात्मरसझरती वाणीके प्रति आकर्षित हुए। हजारों भक्तोंके श्रद्धाजीवन एवं भक्तिजीवन गुरुदेवश्रीके पुनीत चरणोंमें अर्पित हुए। अहा! गुरुदेवश्रीके प्रतापसे मरुस्थलमें कुएकी भाँति, पंचमकालके इस भौतिक विलासके विषमय युगमें चतुर्थकालका अंश—धर्मकालका प्रवर्तन हुआ। वास्तवमें गुरुदेवश्रीने इस कालमें अनेकान्तसुसंगत शुद्धात्मविद्याके नवयुगका प्रवर्तन किया है।

सचमुच तो पूज्य गुरुदेवश्री इन सब कार्योंके 'कर्ता' थे ही नहीं, वे तो अंतरसे केवल उनके 'ज्ञाता' ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। बाह्य कार्य तो 'अकर्ता'भावसे—ज्ञाताभावसे सहजरूपसे हो गये थे। स्वानुभूतिसम्बन्धित भेदज्ञानधारामेंसे प्रवाहित शुद्धात्मदृष्टिजनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याणका मार्ग बतलाया यही वास्तवमें उनका हमारे ऊपर असाधारण महान-महान मुख्य उपकार है। वे बारम्बार कहते थे—इस अल्पायुषी मनुष्यभवमें निज कल्याण साधना तथा उसके कारणभूत सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। सम्यग्दर्शनका माहात्म्य अपार है।

श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है : 'अनंतकालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।' अरेरे! इस भवांतकारी सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मदर्शन—बिना अनादिकालसे अनंत-अनंत जीव संसारपरिभ्रमणके दुःख भोग रहे हैं। जीव चाहे जितने व्रत-तपादि क्रियाकाण्ड करे या शास्त्रोंका ज्ञान कर ले, किन्तु जबतक राग और परलक्ष्यी ज्ञानकी दृष्टि तथा उसकी महिमा छोड़कर भीतर त्रैकालिक आत्मस्वभावकी महिमा न समझे, अन्तर्मुख दृष्टि न करे तबतक उसकी गति संसारकी ओर है। उसमेंसे जो कोई विरल जीव सुगुरगमसे तत्त्वको समझकर अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणती अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन—निज शुद्धात्मानुभूति—प्राप्त कर ले उसीने वास्तवमें, संसारमार्ग पर चले जानेवाले विशाल पन्थसमुदायसे अलग होकर, मोक्षमार्ग पर अपना प्रयाण प्रारम्भ किया है। भले ही वह धीमी गतिसे चलता हो, असंयमदशा हो, अंतरमें साधनाका—स्थिर हो जानेका उग्र पुरुषार्थ न हो, तथापि उसकी दिशा मोक्षके ओरकी है, उसकी जाति मोक्षमार्गीकी है। सम्यग्दर्शनका ऐसा अद्भुत माहात्म्य कल्याणार्थीके हृदयमें उतर जाना चाहिये।

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टि होनेका इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार कर लेनेका अमोघ उपाय बतलानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष-उपकारी सम्यग्दृष्टिके माहात्म्यकी तो बात ही क्या है? ऐसे अपने परम-उपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशय माहात्म्यवंत कृपालु कहानगुरुदेवके प्रति अपना सर्वस्व न्योछावर कर दें तो वह भी कम है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने 'भगवान आत्मा...भगवान आत्मा....ज्ञायक' ऐसी ज्ञायकदेवकी मधुर ध्वनि जीवनपर्यंत गुंजायी। भौतिक जगतमें जहाँ विशाल जनसमुदाय आत्माके अस्तित्व सम्बन्धमें भी शंकाशील है, वहाँ गुरुदेवने युक्ति तथा स्वानुभवके अत्यन्त बलपूर्वक भेरी बजाई कि—'एक ज्ञायक आत्मा ही मैं हूँ, मैं सर्वके ऊपर तैरता परम पदार्थ हूँ।' वे आत्माकी मस्तीमें गाते थे कि—'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उलंघी हो जाय जिनेश्वर'। उन्हें आश्चर्य होता कि—यह, भीतर दृष्टिके समक्ष ही, परम निधान—समृद्धिसे भरपूर ज्ञायकतत्त्व—विद्यमान है उसका उल्लंघन करके–उसे लांघकर—जगत क्यों चला जाता है? यह वस्तु सच्ची', 'यह वस्तु यहाँ यह दीख रही' इस प्रकार दृश्य वस्तुको वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवालेको वह क्यों नहीं देखता?–क्यों उसे लांघकर चला जाता है?

सर्व दृश्य वस्तुओंके द्रष्टाकी—परम निधानकी—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगमसे होती है। अहा! ऐसी उस पवित्र गुरुगमके दाता अपने परमोपकारी गुरुदेवश्री अपनेको परम सौभाग्यसे प्राप्त हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री कहते थे कि—विश्वके सर्व द्रव्य परिपूर्ण स्वतंत्र हैं। सभी द्रव्योंके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्यका शरीरादि परद्रव्योंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्धभावको स्वयं ही करता है। यहाँ स्वाभाविकरूपसे ही प्रश्न होता है कि ''(श्री प्रवचनसार-शास्त्रमें कहे अनुसार) शुभ या अशुभ परिणमनमें 'शुभ या अशुभ' आत्मा बने''—ऐसा

आप कहते हैं और साथ ही ''आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धताका आश्रय करना मोक्षमार्ग है''—ऐसा भी आपका कहना है' इन दोनों बातोंका मेल किस प्रकार है?

इस अत्यन्त-अत्यन्त महत्त्वकी बातका स्पष्टीकरण गुरुदेवश्री इस प्रकार करते थे—स्फटिकमणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; वह लालीरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह लाली स्फटिककी ही है, वस्त्रकी बिलकुल नहीं; परंतु वह लाली लाल रंगके चूरेकी, हिंगडेकी या कुंकुमकी लाली जैसी नहीं है; लालदशाके समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता विद्यमान है। उसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिलकुल नहीं; परंतु शुभाशुभदशाके समय भी सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है। जिस प्रकार स्फटिकमणिको लाल हुआ देखकर कोई बालक रोने लगे कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मैला हो गया', किन्तु जौहरी तो उस लालीके समय ही विद्यमान निर्मलताकी मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दुःखी-दुःखी हो जाता है, परंतु ज्ञानी शुभाशुभपनेके समय ही विद्यमान शुद्धताको जानता होनेसे वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो,

ध्रुवत्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिक भाव कहो—यह सब एकार्थ है ऐसा गुरुदेव कहते थे।

आत्मा 'भविष्यमें' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमानमें ही' वह सामर्थ्य-अपेक्षासे सम्पूर्ण विज्ञानघन है, अनन्तानन्दका पिण्ड है, निर्विकारी है, जिसकी ज्ञानीको स्पष्ट अनुभवसहित प्रतीति होती है। गुरुदेवश्री कहते कि—**'तेरो सरूप न दुंदकी दोहीमें, तोहीमें है तोही सूझत नांही'** । तेरा स्वरूप राग-द्वेषादि द्वंद्वकी दुविधामें नहीं है, इसी समय राग-द्वेष रहित है; उसकी सूझसे ही मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। उसकी सूझके बिना तू संसारमें परिभ्रमण करता है।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धत्वके–ध्रुवत्वके भान बिना शुद्ध परिणति नहीं होती। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वयका अर्थ मात्र 'वह...वह...वह' इतना ही नहीं, किन्तु केवलज्ञानसामर्थ्यसे भरपूर अनन्तवीर्यादिसामर्थ्यसे भरपूर ऐसा 'वह....वह...वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा परमपारिणामिकभाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्धज्ञायकका गुरुदेवश्री सतत अनुभव कर रहे थे इससे उनको निरन्तर आंशिक शुद्धपरिणति वर्तती थी। उसके साथ वर्तनेवाला प्रयोजनभूत विषयोंका—द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादिका—ज्ञान भी उनको विशदतापूर्वक सम्यक्‌रूपसे परिणमता था जिससे शास्त्रोंके लुप्तप्राय हो गये सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगतमें खूब प्रचलित हुए।

वे कहते थे कि—'अहो जीवों! अशुभ तथा शुभ दोनों भाव बंधके कारण है, मोक्षके नहीं।' 'तो मोक्षका कारण कौन?'

'शुद्धभाव'। 'कषाय कम (मन्द) करें उतना तो शुद्धभाव होगा न? 'दृढ़तासे उत्तर मिलता है कि 'वह तो शुभभाव है; निरंतर शुद्ध ऐसे निज आत्मपदार्थको श्रद्धना-जानना और उसमें लीन होना वह शुद्धभाव है'। अशुद्धभावके समय भी शुद्ध? अशुद्ध और शुद्ध एकसाथ कैसे हो सकते हैं?' 'हो सकते है। 'यद् विशेषेपि समान्यं एकमात्रं प्रतीयते'। अशुद्ध विशेषोंके समय भी सामान्य तो एकरूप–शुद्धरूप रहता है।' शुभाशुभ पर्यायके समय भी भीतर स्वभावमें सामर्थ्यरूपसे परिपूर्ण भरपूर शुद्धता भरी पड़ी है वह बात, श्री पंचाध्यायीके 'सन्त्यनेकेत्र दृष्टान्ता हेमपद्म-जलाऽनलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैन्धवाः॥'—इस श्लोकमें कहे गये सुवर्ण, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र एवं लवणके दृष्टांतों द्वारा गुरुदेवश्री समझाते थे। विशेष-अपेक्षासे होनेवाली अशुद्धताके समय भी सामान्य-अपेक्षासे रहनेवाली द्रव्यकी शुद्धता समझाते हुए पूज्य गुरुदेवश्री कहते कि —द्रव्य अपेक्षासे वर्तमानमें शुद्धता विद्यमान न हो तो किसीकाल पर्याय-शुद्ध हो ही नहीं सकती। जहाँ अज्ञानी विशेषोंका आस्वादन करते हैं वहीं ज्ञानी सामान्यके आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। वही संक्षेपमें बंधमार्ग और मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने भारतवर्षमें सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूतिकी महिमाका पावन युगप्रवर्तन किया।

जिस प्रकार श्री प्रवचनसारमें आचार्य भगवानने जगतके समक्ष घोषित किया है कि 'श्रामण्यको अंगीकार करनेका यथानुभूत—हमने स्वयं अनुभव किया हुआ—मार्ग, उसके प्रणेता हम यह खड़े है', उसी प्रकार अध्यात्मविद्या-युगस्रष्टा पूज्य

गुरुदेवश्रीने भी स्वयं अनुभव करके अत्यन्त दृढ़तापूर्वक सिंहनाद किया कि 'अनुभव करके कहते है कि स्वानुभूतिका मार्ग ही मोक्षका उपाय है, तुम निर्भयरूपसे इस मार्ग पर चले आओ।'

स्वानुभूति होने पर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है? उस सम्बन्धमें गुरुदेवश्री कहते थे कि—स्वानुभूति होने पर, अनाकुल–आह्लादमय, एक, समस्त विश्व पर तैरता विज्ञानघन परमपदार्थ—परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्‌रूपसे देखनेमें—श्रद्धनेमें ही नहीं आता; इसलिये बिना स्वानुभूतिके सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना? स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका किसी भी प्रकार निर्णय करनेको गुरुदेव भारपूर्वक कहते थे। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सत्‌पना और स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वोंका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न-भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—गुरुदेवश्रीने भारतव्यापी प्रचार किया। तीर्थंकरदेवों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक सत्य तो गुरुदेव द्वारा विविघ माध्यमोंसे प्रकाशित हुए ही; साथ ही साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर–मुकुटमणि जो शुद्धद्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिणामिक भाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्म द्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसे बाहर लाकर पूज्य गुरुदेवश्रीने अथाह उपकार किया है।

जीव परद्रव्यकी क्रिया तो नहीं करता, किन्तु विकारकालमें

भी स्वभाव-अपेक्षासे निर्विकार रहता है, अपूर्णदशाके समय भी परिपूर्ण रहता है, सदाशुद्ध है, कृतकृत्य भगवान है। जिसप्रकार रंगितदशाके समय स्फटिकमणिके विद्यमान निर्मल स्वभावकी प्रतीति हो सकती है, उसीप्रकार विकारी, अपूर्ण दशाके समय भी जीवके विद्यमान निर्विकारी, परिपूर्ण स्वभावकी प्रतीति हो सकती है। ऐसे शुद्धस्वभावके अनुभव बिना मोक्षमार्गका प्रारंभ भी नहीं होता, मुनिपनेका पालन भी नरकादिक दुःखोंके भयसे या अन्य किसी हेतुसे किया जाता है। 'मैं कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, सहजानंद हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये' ऐसी परम उपेक्षारूप, सहज उदासीनतारूप, स्वाभाविक तटस्थतारूप मुनिपना द्रव्यस्वभावके अनुभव बिना कभी नहीं आता। ऐसे शुद्धस्वभावके—ज्ञायकस्वभावके निर्णयके पुरुषार्थकी ओर, उसकी लगनकी ओर आत्मार्थियोंको मोड़कर, भवभ्रमणसे आकुलित मुमुक्षुओं पर गुरुदेवने अकथ्य उपकार किया है।

जिस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीका तात्त्विक उपदेश हमें सत्यमार्गकी ओर उन्मुख करता है उसी प्रकार उनके ध्येयनिष्ठ जीवनका प्रत्यक्ष परिचय, उनका सत्संग हमारे समक्ष आत्मार्थीजीवनका आदर्श उपस्थित करके हमें पुरुषार्थकी प्रेरणा देता था। 'इस महँगे मनुष्यभवमें भवभ्रमणके अन्तका ही उपाय करना' यह एक ही जीवनध्येय गुरुदेवका पहलेसे ही था। उस ध्येयको उन्होंने समग्र जीवन समर्पित किया था। उसीके लिये अध्ययन, उसीका मंथन, उसीका प्रयत्न, वही उपदेश, वही बात, वही चर्चा, वही धुन, उसीके स्वप्न, उसीकी भनक—उनका समस्त जीवन उसी हेतु था। गत अनेक वर्षोंमें जगतमें विविध आन्दोलन आये और गये, अनेक राजकीय, सामाजिक, धार्मिक झंझावात हुए, किन्तु मेरु समान अचल गुरुदेवके ध्येयनिष्ठ

जीवनको वे लेशमात्र स्पर्श नहीं कर सके। 'इस एक भवके सुखाभासके हेतु कल्पित व्यर्थ प्रयत्नसे क्या लाभ? मुझे तो एक भवमें अनंत भवोंका अन्त करना है' ऐसे भावपूर्वक, फिर जन्म न हो उसके उपायकी धुनमें वे निज अन्तर्मुख जीवनमें अत्यन्त लीन रहे। भवअंतके उपायके सिवाय अन्य सब उन्हें अत्यन्त तुच्छ लगता था।

पूज्य गुरुदेवश्रीका अंतर सदा 'ज्ञायक.....ज्ञायक....ज्ञायक, ध्रुव....ध्रुव...ध्रुव, शुद्ध....शुद्ध...शुद्ध, परमपारिणामिकभाव'—इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनभावसे निरंतर–जागृतिमें या निद्रामें–परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसारादिके प्रवचन करते हुए या चर्चा-वार्तामें वे ज्ञायकके स्वरूपका और उसकी महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहो! वे स्वतंत्रता और ज्ञायकके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थियोंको सच्चा मुक्तिका मार्ग बतलाया!

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह-अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भावे भरे;
ज्ञायकमहीं तन्मय बनी ज्ञातृत्वने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो।

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे अपने गुरुदेव।

वे द्रव्य-अपेक्षासे 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभव करते थे तथापि पर्याय-अपेक्षासे 'हम कब सिद्धपना प्रकट करेंगे!' इस प्रकार भावना भाते थे। सिद्धत्वकी तो क्या, किन्तु संयमकी भावनारूप भी वे परिणमते थे।

'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल जहँ छाया जी,
चरणकरणगुणधार महामुनि मधुकर मन लोभाया जी'

ऐसे अनेक भावविभोर ललकारसे तथा 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो?....' इस प्रकार हृदयकी गहराईसे दैनिक प्रवचनोंमें तथा श्री जिनबिम्ब-प्रतिष्ठामें दीक्षाकल्याणकके प्रासंगिक प्रवचनमें विविध प्रकारसे संयमकी भावना भाते हुए गुरुदेवश्रीकी पावन मूर्ति भक्तोंकी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपनेको पूर्ण शुद्ध देखें—मानें तथापि संयमकी भावना भायें?' हाँ; शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण शुद्ध अपनेको देखते-मानते हुए भी व्यक्ति अपेक्षासे शुद्ध होनेकी भावना ज्ञानीको अवश्य होती है। गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणति-रूप परिणमित हो रहे थे। वास्तवमें तो शुद्धस्वरूपके दृष्टा सम्यग्दृष्टि जीवको ही सच्ची संयमकी भावना होती है, क्योंकि वह संयम-परिणतिका सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टिको सच्ची संयमकी भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयमकी खबर नहीं है।

'बहिनश्रीके वचनामृत'के 380वें बोलमें कहा है कि :— 'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगता, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री शक्ति-अपेक्षासे इस बोलका बारम्बार उल्लासपूर्वक स्मरण करते थे, उसी प्रकार व्यक्ति-अपेक्षा सिद्धत्व प्राप्त करनेकी भावनाका 401वाँ बोल भी अनेक बार उल्लसितभावसे याद करके प्रसन्नतापूर्वक कहते :— -देखो! बहिन कैसी भावना भाती हैं? 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है।....अब हम स्वरूप-स्वदेशकी

ओर जा रहे है। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।'

ऐसा, अनेकान्तसुसंगत यथार्थ संधिवाला पूज्य गुरुदेवश्रीका जीवन हमें सच्चा मार्ग बतला रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभभावोंमें संतुष्ट न होकर ध्रुव तत्त्वके आलम्बनके पुरुषार्थकी प्रबल प्रेरणा दे रहा है; तथा 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढ़ताके साथ साथ 'हम अपने मूल वतनमें जानेके लिये तरस रहे हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहना चाहिये, नहीं तो 'ध्रुव तत्त्व'की समझके प्रकारमें ही कुछ भूल है ऐसी चेतावनी देकर, दीपस्तम्भरूप रहकर, हमारी जीवननौकाको चट्टानी मार्गसे बचाकर हमें सच्चे मार्ग पर लगाते हैं। श्री सद्गुरुदेवकी स्तुतिमें हम गाते हैं न—

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग बिन वह नाव भी तारे नहीं;
इस कालमें शुद्धात्मविद्, नाविक महा दुष्प्राप्य है;
मम पुण्यराशि फली अहो! गुरुक्हान नाविक आ मिले।।

—अहा! इस प्रकार परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवका स्वानुभवविभूषित पवित्र जीवन तथा अध्यात्मोपदेश हमें अत्यन्त उपकारक हो रहे हैं।

वस्तुतः पूज्य गुरुदेवश्रीने स्वानुभूतिप्रधानताके एक अद्भुत युगका प्रवर्तन किया है। **'मेरो धनी नहि दूर दिसंतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीकै'** ऐसा प्रबल सिंहनाद करके गुरुदेवश्रीने सर्वज्ञ-वीतरागप्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिनशासनकी मंद हुई ज्योतिमें नया तेज डालकर आत्मार्थी जीवों पर वास्तवमें महान अनहद उपकार किया है।

ऐसे चमत्कारपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान-भक्तिके नवयुगका सृजन करनेवाले महान-महान उपकारी परमकृपालु परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने जीवनके अंतिम क्षण तक अपने स्वानुभवसमृद्ध ज्ञानभण्डारमेंसे भक्तोंको खूब-खूब दिया। भारतके सुपात्र जीवोंको निहाल कर दिया। 91 वर्षकी उम्र तक अविरतरूपसे वीतरागविज्ञानका वितरण किया। अन्तमें भक्तोंके भाग्य क्षीण हुए। वि.सं. 2037, मगसिर कृष्णा सप्तमी, शुक्रवार (ता. 28-11-1980)के दिन भक्तोंके परमाधार गुरुदेवश्रीने भक्तोंको निराधार छोड़कर अंतर ज्ञायककी साधनायुक्त समाधिपरिणाममें स्वर्गकी ओर महाप्रयाण किया।

अहो! कृपालु गुरुदेवश्रीकी उपकार भरपूर महिमाका तो क्या वर्णन हो!

श्रीमद् राजचंद्रजीने गुरुमहिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि—

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार.
शुं प्रभु चरण कने धरूं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन.
आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन,
दास, दास, हुं दास छुं, आप प्रभुनो दीन.

परम कृपालु पूज्य गुरुदेवश्रीकी अपार उपकारमहिमा, उनकी परम-भक्त प्रशममूर्ति धन्यावतार आत्मज्ञानी पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके विविध प्रसंगों पर बोले गये शब्दोंमेंसे कहकर पूज्य गुरुदेवश्रीका 'संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन' समाप्त करता हूँ :—

''पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। वह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेवका द्रव्य अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परम-उपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावंत गुणोंसे भरपूर हैं।

पूज्य गुरुदेवके चरणकमल की भक्ति और उनका दासत्व निरंतर हो।

''तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानबीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंचमकालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावंत हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।''

''गुरुदेवने शास्त्रोंके गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूपसे रखा है। हमें कहीं सत्य

ढूँढने जाना नहीं पड़ा। गुरुदेवका कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ'—इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है.....।

''....(श्री कहानगुरुदेवने) अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो।''

—यह है प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके श्रीमुखसे विभिन्न अवसरों पर प्रवाहित, आध्यात्मिक युगपुरुष परमकृपालु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी उपकारगरिमायुक्त लोकोत्तर महिमा। ऐसे सातिशय महिमावंत महापुरुषके पावन योगसे भारतवर्षका आध्यात्मिक क्षेत्र उज्ज्वल हुआ है। शुद्धात्मदृष्टिका सुधापान करानेवाले इन तिरते पुरुषके सत्समागमका लाभ लेनेवाले महान भाग्यशाली बने है।

परमपूज्य परमोपकारी गुरुदेवके चरणोंमें—उनकी मांगलिक पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्गदर्शक उपदेशोंको और अनेकानेक उपकारोंको दृष्टि समक्ष रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक भावभीनी वंदना हो। उनके द्वारा प्रकाशित स्वानुभूतिका पावनपंथ जगतमें सदा जयवंत वर्ते और हमें सत्पुरुषार्थकी प्रेरणाका अमृतपान निरंतर कराता रहे।

सोनगढ़
—ब्र. चंदुलाल खीमचंद झोबालिया
सं. 2039,
भाद्रपद कृष्णा दूज

गुरुदेवका द्रव्य ही अलौकिक था। उनकी वाणी भी, अन्दर आत्माकी रुचि जाग्रत कर दे ऐसी अलौकिक थी। उनकी वाणीकी गहराई और झंकार कुछ और ही थे। वाणी सुनते अपूर्वता लगे व 'जड़-चेतन भिन्न हैं' ऐसा भास हो जाय ऐसी वाणी थी। 'अरे जीवों! तुम देहमें विराजमान भगवान आत्मा हो कि जो अनंत गुणोंका महासागर है, मन-वचन-कायासे भिन्न है और विभावसे भी उसपार है। उस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर भगवानका तुम अनुभव करो, तुम्हें परमानंद होगा।'—ऐसी गुरुदेवकी अनुभवयुक्त जोरदार वाणी श्रोताओंको आश्चर्यचकित कर देती थी। बहुत प्रबल वाणी! संसारका जहर उतार दे; विषय-कषायको मंद कर दे; पापका रस तो झर ही जाये, परंतु पुण्यका रस भी न रहे; शुद्ध परिणतिकी तथा उसके आश्रयभूत शुद्ध ज्ञायक आत्माकी लगन लगा दे ऐसी मंगलमय वाणी थी गुरुदेवकी।

इस विषमकालमें ऐसे महापुरुषका योग मिलना अति-अति दुर्लभ है। उनके दर्शन व वाणी कितने दुर्लभ हैं वह अब सब भक्तोंको वेदनपूर्वक स्पष्ट समझमें आता है। पुण्यके थोक उछले बिना ऐसे महापुरुषका योग इसकालमें कहाँसे हो सके? भारतके महाभाग्य थे कि गुरुदेवका जन्म यहाँ हुआ, इतने वर्षों तक सबको अपूर्व लाभ मिला। जहाँ उनके चरण पड़े वहाँ मंगल ही मंगल हो जाता था।

गुरुदेवने भारतको बहुत दिया है। 45-45 वर्ष तक श्रुतकी जोरदार वर्षा बरसाई है। भारतके उपर उनका अपार उपकार है। —**बहिनश्री चम्पाबेन**

तीर्थंकरभगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानबीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।

—बहिनश्री चंपाबेन

*

अध्यात्मयुगस्रष्टा श्री कानजीस्वामी (हिन्दी)
प्रस्तुत आवृत्तिके प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशी

रु. 2001=00	क्षायिक और मीमांसा जैन, उदयपुर
रु. 2000=00	मनिषभाई जैन, उदयपुर
रु. 1001=00	दीपिकाबेन गंगावत, उदयपुर
रु. 1000=00	नीकी निरंजन जैन, उदयपुर

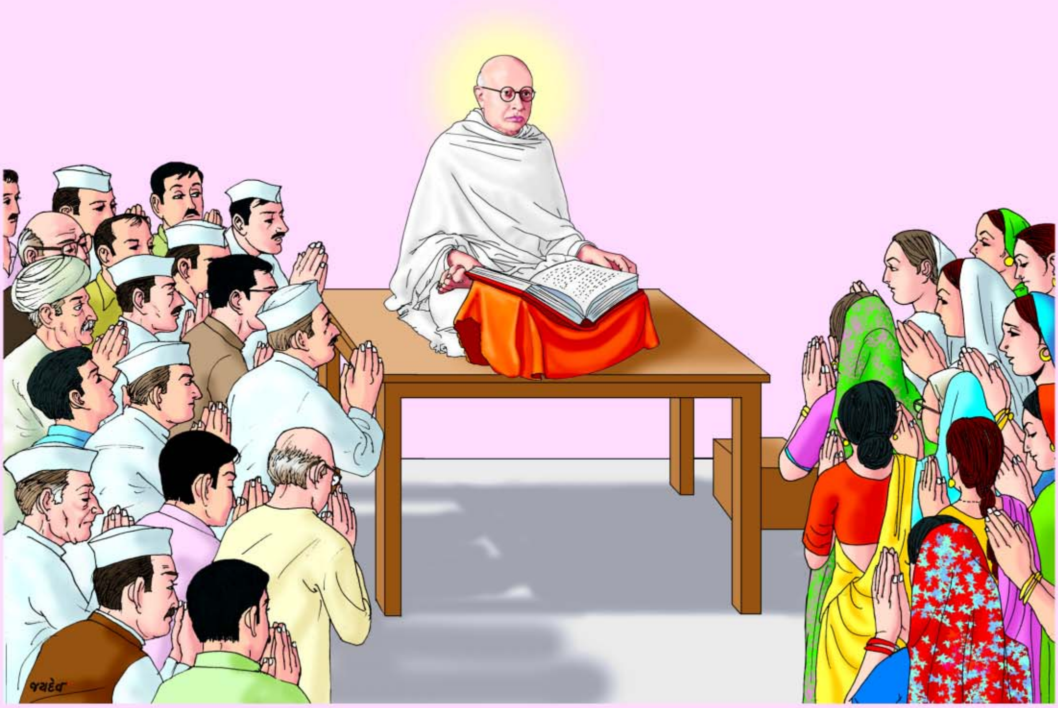

अहो! उपकार जिनवरका, कुन्दका ध्वनि दिव्यका।
'जिन'के, 'कुन्द'के, 'ध्वनि'के दाता श्री गुरुकहानका॥

नित्ये सुधाचरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण सुमेघ! तने नमुं हुं,
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं,

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.